Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 9.134
Volume - 9, Issue - 7, July - 2026

DOIs:10.2018/SS/202607024 --:-- Research Paper / Article / Review

संत रविदासः वाणी का विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. सुमन देवी
सहायक प्रवक्ता हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, हिसार
panghalsuman7@gmail.com

सन्त बड़े बेढ़ब होते हैं । उनकी वाणी का मूल्यांकन करना एक दुष्कर कार्य है । सन्त हो पुष्प की तरह स्वतः प्रस्फुदित होते हैं और अपनी सुगन्ध को चतुर्दिक फैलाकर, इस संसार से चले जाते हैं ।[1] सन्त शिरोमणि रविदास इस कथन के अपवाद नहीं हैं। संत शिरोमणि रविदास आत्मविश्वास एवं आत्मनिवेदन में मग्न ब्रह्मलीन साधक थे । प्रायः इस युग में सभी संत आत्मप्रदर्शन से सर्वथा दूर ही रहे । कैसी विडम्बना है कि इसी युग के संत रविदास जाति से अछूत होने के साथ-साथ पठन-पाठन से भी दूर ही रहे थे । यही वह मुख्य कारण है, जिससे उनकी सहज-अनुभूति पूर्ण वाणी अधिक देखने को नहीं मिलती है, जो कुछ वाणी उनके शिष्यों या परवर्ती शिष्यों ने सुनकर लिपिबद्ध की है।[2] फिर भी जो उनकी हस्तलिखित वाणी या उसके आधार पर वाणी के प्रकाशित ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उन्हीं के आधार पर ही उनका विवेचन प्रस्तुत किया जाता है । संत रविदास की वाणी में निहित आत्म-निवेदन विनयभाव की अभिव्यक्ति, वाणी की सहजता के रूप में ही अनुगामी पाठक-श्रोता-समाज को संवेदित करती रही है। इस संबंध में सन्त रज्जब अली का प्रस्तुत दोहा, रचनाकार को शब्दों में बाँधकर मुखर करता जान पड़ता है । कवि-वाणी की समीक्षा करने से पहले अनुभूति के धरातल पर रचनाकार की संवेदना को समझना बहुत आवश्यक है ।[3]

बीज शब्द :- आत्मनिवेदन , ब्रह्मलीन, आत्मप्रदर्शन, संवेदित, परवर्ती, प्रस्फुदित, चतुर्दिक ।

1.शोध लेख :-

"सिरजनहारे सबद के सदा सु सबदौ माहिं
रज्जब गुरु गोब्यद जिव, वचनौ बाहरि नाहिं ।।'[4]

सन्त रैदास की वाणी ने भी इस प्रकार समूचे उत्तर भारत में यात्रा की है । यह बंगाल से गुजरात तक अर्थात् उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब तथा महाराष्ट्र तक पहुँची है । उनके अनुयायियों ने वाणी के हस्तलिखित रूप भी तैयार किए होंगे, जो बाद में प्रकाशित भी हुए ।[5]

2.प्रकाशित वाणी संग्रह :

वर्तमान समय तक संत रविदास वाणी के हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर साहित्य प्रकाशित हुआ है जो कि निम्नलिखित हैं :-

1. आदि गुरुग्रन्थ साहिब हिन्दी) सम्पा. गुरु अर्जुन देव (अनुवादक चेला राम
2. रैदास जी की बानी बेलवेडियर प्रेस
3. श्री रामानन्द शास्त्री तथा वीरेन्द्र संत रविदास और उनका काव्य पाण्डेय
4.संत रैदास : व्यक्तित्व एवं कृतित्व श्री संगम लाल पाण्डेय
5.संत रविदास - श्री रत्नचन्द्र
6. संत सुधासार, सं. श्री वियोगी हरि

7. संत रैदास : कृतित्व, जीवन और विचार डॉ. योगेन्द्र सिंह
8. संत रविदास, विचारक और कवि डॉ. पदम गुरुचरन सिंह
9. रविदास दर्शन, श्री गुरु रविदास जी की साखियां, आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद
10. संत गुरु रविदास डॉ. वेणी प्रसाद शर्मा
11. रैदास परिचई

इन ग्रंथों में सन्त रविदास की वाणी संकलित है और कुछ पुस्तकों में उनकी वाणी के साथ उनके जीवन एवं कृतित्व का विवेचन है । रैदास जी की बानी संग्रह के पाठ के संबंध में मतैक्य न होने के कारण संग्रह में दिए गए पदों की भाषा पर अरबी-फारसी की शब्दावली के कारण, परवर्ती रूप होने का आरोप है पर डॉ. रामकुमार वर्मा का मानना है कि शब्दावली भी तो लोक में प्रचलित हो रही होगी ।[6] रैदास जी का जीवन-परिचय लिखते समय ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को भी ध्यान में रखा गया है। विवेचन में बौद्धिक पक्ष की प्रधानता इसी बात से जानी जा सकती है कि लेखक ने 'भक्तमाल' के टीकाकार 'प्रियादास' की यह बात अमान्य ठहराई है कि रैदास पूर्व जन्म में ब्राह्मण थे ।[7] लेखक ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है 'वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणों को सर्वश्रेष्ठ मानने वाले उच्चकुलीन लोग कदाचित इस बात को असंभव मानते हैं कि चमार जैसी नीची जाति में उत्पन्न होकर भी कोई व्यक्ति भक्त अथवा सन्त बन सकता है। इसी मनोवृत्ति के कारण वे इस प्रकार की कहानियाँ बनाकर उनका ब्राह्मणवंश के साथ संबंध स्थापित कर देते हैं। इस जन्म में नहीं तो पूर्वजन्म में ही सही। स्वामी ज्ञानदेव के ही समकालीन सन्त स्वामी नामदेव हुए, जिन्होंने इस समन्वय की भावना को आगे बढ़ाया और बिठ्ठल सम्प्रदाय की स्थापना हुई। पाण्डरपुर के मंदिर में इसी समन्वय के प्रतीक स्वरूप शिव की मूर्ति को विष्णु अपने सिर पर ऊपर उठाये हुए दिखाई गये हैं।[8] महाराष्ट्रीय विचारधारा: शैव तथा वैष्णव (मिश्रित) कुछ विद्वानों के मतानुसार भक्ति की धारा दक्षिण से महाराष्ट्र होती हुई उत्तर में आई। जहाँ वैष्णव विचारधारा का शैव विचारधारा से समन्वय हो गया। महाराष्ट्र के महान्समन्वयकारी संतों में दो नाम सर्वाधिक प्रमुख हैं संत ज्ञानदेव तथा संत नामदेव। संत ज्ञानदेव यद्यपि नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी थे ।[9]

3. पथ-प्रदर्शन तथा पवित्र वातावरण :-

प्रत्येक मार्ग में उचित पथ-प्रदर्शन की सदा ही तथा प्रत्येक स्तर पर आवश्यकता है आत्मोदय के अतिरिक्त बोध या ज्ञान तथा साधना के प्रति उचित वातावरण दो रूपों में मिल सकता है। गुरु तथा अपने से उस मार्ग में श्रेष्ठ व्यक्तियों का साथ जिन्हें सन्त या भक्त कहा गया है। ज्ञान प्राप्ति के इन दोनों ही साधनों की पर्याप्त महत्ता वर्णित की गई है। गुरु की यह अनिवार्यता बढ़ती गई और क्रमशः गुरु ईश्वर या ब्रह्म का समकक्ष ही हो । गया सन्त और भक्ति साहित्य में तो गुरु का रूप ईश्वर के समकक्ष मानते हुए कहीं-कहीं उसे ईश्वर से भी अधिक मान लिया गया है ।

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पायं ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दिया बताय ।।

सन्तों ने उस परमतत्त्व की खोज करने वाले के लिए तत्त्व का भेद देने वाला भेदी ज्ञान की कुँजी प्रयोग करके अज्ञान का अन्धकार दूर करने वाला यम की फाँस से मुक्त करने वाला । आदि अनेक रूपों में सम्मान प्रदान किया गया है । परवर्ती सन्त साहित्य में तो गुरु-भक्ति स्वयं में एक भक्ति का विषय बन गई, उसका चित्रण आराध्य के रूप में किया गया तथा गुरु भक्ति के भी नियमतः विधि-विधान विहित कर दिये गये ।

हो अंखियां गुरु दरशन की प्यासी ।

इकटक लगी पंथ निहारु, तनसं भई उदासी ।
रीति बिना मोहि चैन नहीं है, चिन्ता अधिक सतावै ।
तलफल रहै, कल्पना भारी, निश्चल बुधि नहीं आवै ।'[10]

संत रैदास के जीवन से सम्बन्धित कुछ जनश्रुतियाँ :- सन्त रैदास के जीवन से सम्बन्धित जनश्रुतियों को मूलतः तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकार की जनश्रुतियाँ वे जनश्रुतियाँ कही जा सकती हैं जिनके माध्यम से सन्त रैदास के पूर्व जन्म में उच्चवंशी होने का परिचय मिलता है । द्वितीय प्रकार की वे जनश्रुतियाँ कही जा सकती हैं, जिनमें रैदास की सन्त स्वभाव का परिचय मिलता है । तृतीय प्रकार की वे जनश्रुतियाँ हैं, जिनसे रैदास के विभिन्न क्षेत्रों में सम्मानित होने का वर्णन मिलता है ।

रविदास दर्शन :- आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद ने इस कृति का प्रकाशन श्री गुरु रविदास संस्थान, अनुसंधान विभाग, चण्डीगढ़ से सन् 1973 ई. में करवाया । इसमें 37 उपशीर्षकों के अन्तर्गत 198 साखियां संगृहीत हैं ।[11] इस संग्रह की आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "अपने जीवन परिश्रम और लगन के द्वारा आजाद जी ने इन वाणियों का उत्तम संग्रह प्रस्तुत कर दिया है ।[12]

रैदास जन्म के कारनै, होत न कोऊ नीच ।
नर कूं नीच करि डारि है, ओछे करम की कीच ।।[13]

इस पद से संत रैदास दलित समाज को समझाते हैं कि जन्म के कारण कोई व्यक्ति नीच नहीं होता है । केवल औछे कार्य ही मनुष्य का स्तर नीचे गिराते हैं अर्थात् नीच बनाते हैं । इस पद ने जात के गरुर को कहीं का नहीं छोड़ा । जाति का घमण्ड करने वालों को यह उपदेश अपना आचरण सुधारने की सलाह प्रदान करता है । साथ ही साथ जाति-पाति के द्वारा सताये गये लोगों का साहस बढ़ाता है । उन्हें एक नई प्रेरणा प्रदान करता है ।

4. संत रविदास की प्रामाणिक वाणी :

भारतीय चिंतन में दर्शन-शास्त्र एवं आचार-शास्त्र को परस्पर संबद्ध माना गया है और इसीलिए यहाँ विधिवत नीति-शास्त्र का उन्नयन हुआ । दार्शनिक उपदेश देने का अधिकारी भी उन्हीं लोगों का माना गया, जिनका नैतिक जीवन एवं आचरण उच्च कोटि का हो. 'जो शान्त-चित्त, जितेन्द्रिय, दोषरहित, आज्ञाकारी, गुणवाले, सदा शास्त्रानुसार आचरण करने वाले और मोक्ष के चाहने वाले हों ।[14] संत रविदास की वाणियों में परोपकार भारतीय संस्कृति का एक उच्चतम गुण है । स्वार्थरहित होकर दूसरों का हित करना ही परोपकार है।

'महाभारत' के अनुसार परोपकार ही पुण्य है और पर-पीड़न ही पाप है। [15]

वर्ण-व्यवस्था :- मनुष्य के सामाजिक जीवन का नियमन करने के लिए भारतीय चिंतकों ने 'मूलभूत मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सिद्वान्तों पर आधारित । जिस जीवन पद्धति का विधान किया है, उसे भारत के प्राचीन साहित्य में 'वर्ण-व्यवस्था' की संज्ञा प्राप्त है । समाज को चार वर्गों में विभक्त करके प्रत्येक के कर्त्तव्य-कर्मों का निर्देश किया गया है।[16] पहले प्रकार के 'ब्राह्मण' की संज्ञा में आते है, जो अपने ज्ञान-शक्ति प्रधान जीवन तथा अखण्ड साधना के द्वारा समाज का पथ प्रदर्शित करते हैं । संक्षेप में, इस वर्ग की विशेषताएँ लोकमंगल के लिए ज्ञान देना, धन-कीर्ति आदि की भौतिक स्पर्धाओं से दूर रहना, आत्मसंयम, सरलता, तप, त्याग तथा पवित्रता आदि है। दूसरे स्थान पर शक्ति तथा सत्ता में अभिरुचि रखने वाले 'क्षत्रिय'आते है, जिनके व्यक्तित्व में शौर्य, तेज, धैर्य, चतुरता, व्यवहार-

कुशलता, युद्ध में साहस, दान तथा स्वामित्व-भाव आदि गुणों का दोना आवश्यक माना गया है । ऐसी प्रकृति के लोग अपनी क्षमता तथा योग्यता के अनुसार प्रशासन तथा सेना सम्बन्धी अनेक उत्तरदायित्वों का सम्पादन करते हैं। ये अपने तेजधार शास्त्रों के कारण युद्ध में योद्धाओं की श्रेणी में आते हैं । तीसरे स्थान पर धन-समृद्धि में ही रुचि और योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को 'वैश्य' कहा गया है । ऐसे लोग वस्तुओं का क्रय-विक्रय, छोटे-बडे उद्योग साहूकारी, देशी तथा विदेशी व्यापार इत्यादि व्यवसाय से धन को सेवा करने का साधन मानकर हिन्द धर्म के उत्कर्ष युग में धनवान अपने धन को सामाजिक ट्रस्ट के रूप में मानते है । उससे समाज की शिक्षा, दवादारु, जल-व्यवस्था और मनोरंजन का प्रबन्ध करते थे । उपर्युक्त तीनों वर्णों के अतिरिक्त चौथे वर्ग के अन्तर्गत 'शूद्र' संज्ञा प्राप्त वे व्यक्ति आते हैं, जो न उतने विचारशील, न उतने पराक्रमी तथा न ही उतने वाणिज्य सम्बन्धी योग्यता वाले ही हैं, किन्तु जो शारीरिक परिश्रम तथा हस्तशिल्प का कार्य कर सकते हैं । भारतीय संस्कृति ने ऐसे लोगों को इतर वर्णों की सेवा का भार सौंपा है । इस वर्ण विभाजन का अर्थ किसी भी प्रकार के ऊँच-नीच का द्योतक नहीं है । 'समाजरूपी शरीर की पूर्णता के लिए अवयव रूप चारों वर्णों की स्थिति अनिवार्य है तथा वे सभी एक-दूसरे के ऐसे पूरक हैं कि न तो कोई पूर्णतया आत्मनिर्भर है और न अन्यों के लिए परिहार्य ही ऐसी स्थिति में इस व्यवस्था के अन्तर्गत किसी भी प्रकार के विद्वेष अथवा वर्ग-संघर्ष की कल्पना ही नहीं की जा सकती ।[17] कवि का कथन है कि जो लोग अज्ञानी हैं और मतिमंद है. वे ही वर्ण आश्रम के फंदे में फंसे हुए हैं । यथा :-

जो अज्ञानी नर मतिमंदे ।
वरनाश्रम के धरमहिं फंधे ।

गुरुनानक का जाति पाति में विश्वास नहीं था । वे क्षत्रिय और ब्राह्मण का घर छोड़ कर शूद्रों के घर भोजन करते दिखाए गए हैं ।[18] गुरु नानक देव और संत रविदास दोनों कवियों ने अपनी कविता के द्वारा वर्ण-व्यवस्था पर भी करारी चोट की है । इन निर्गुण संतों का वर्ण-व्यवस्था से विरोध केवल विरोध के लिए नहीं था, बल्कि समाज सुधार एवं कल्याण के लिए था । "अब विप्र परधान करहिं डंडउति तेरे नाम शरणाई रविदास दासा ।[19] रविदास के उच्च आचरण और भक्ति से प्रभावित होकर ब्राह्मण भी उन्हें प्रणाम करने लगे थे । अर्थात् वे उनके ज्ञान और भक्ति का सम्मान करते थे ।

बिन गुरु साकत कहहु को तरि आ । हउमें करत भवजलि परिआ ।
बिनु गुरु पारु न पावै कोई हरि जपीरै पारि उतारा ।।[20]

बिना गुरु के भला बताओ कौन शाक्त मनुष्य तरा है, वह शाक्त तो अहंकार करता हुआ, संसार रूपी सागर में ही पड़ा रहता है । बिन गुरु के कोई भी भवसागर पार नहीं पा सकता । अतः गुरु की शिक्षा द्वारा हरि का जाप करो । हरि नाम रूपी जप तुम्हें मोक्ष दिला देगा ।

संत रविदास सभी के अन्दर ईश्वर का वास मानते हैं और उसकी प्राप्ति के लिए अन्तर्मन की शुद्धि और अभ्यास द्वारा ही हो सकता है । वास्तव में संत रविदास सच्चे संत है तभी तो वे व्यर्थ बातों का त्याग कर परमात्मा में रमना चाहते हैं। संत अपने आत्मबल और चरित्र के द्वारा ही समाज की धारा को बदलता है, और उसमें नई चेतना जागृत करता है । संत संसार में मानव-कल्याण के लिए ही आते हैं ।

5. संत रविदास वाणी का काव्य रूप :

एक और तथ्य जो सबसे अधिक उभर कर सामने आता है, वह है 'गुरु वाणी' (नानक वाणी) की विविध कथा प्रसंगों में अवस्थिति उसकी व्याख्या और महत्ता स्थापित करना । जहाँ कहीं कवि किसी प्रसंग में गुरु नानक के आध्यात्मिक विचारों को प्रस्तुत करना चाहता है वहाँ उसने 'गुरवाणी' को उद्धृत करके उसकी सरल भाषा में व्याख्या की है। [21] कवि ने यहाँ अच्छा परिचय किया है,

जिसका प्रदर्शन विविध पौराणिक प्रसंगों, कथाओं को सार रूप में या दृष्टान्तों के रूप में अथवा उपमान-योजना के रूप में प्रस्तुत करके किया गया है । इसका एक अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण रामकथा के प्रस्तुतीकरण में मिलता है । लगभग 40 चौपइयों में कवि ने सारी राम-कथा का सारांश दे दिया । [22] शृंगार रस का इस काव्य में बहुत कम वर्णन हुआ है । इसका मुख्य कारण यही है कि कवि ने गुरु नानक के चरित्र का वर्णन किया है, जो सर्वत्र भोग विलास को त्याग कर हरि नाम स्मरण का उपदेश देते है । सन्त रैदास की वाणी में बौद्ध तत्त्व-चिन्तन और उसके परवर्ती उपसम्प्रदायों का प्रभाव कहीं-कहीं करुणा भावना और कहीं क्षण भंगुरता के विचार के रूप में देखने को मिलता है ।'[23] महायान विचारधारा के पक्षधर, छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर आदि जो सभी प्रकार की सीमाओं को लाँधकर अपनी-अपनी साधना के आधार पर अपना उद्धार करने का विचार रखते हों ।[24] इस प्रकार महायान की विचारधारा ने बौद्धधर्म को जन-जन तक पहुँचाने का पूरा प्रयत्न किया ।दोनों में वर्णव्यवस्था का विरोध एवं मध्यममार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रमुख रही है । इस प्रकार हीनयान में जहाँ चिन्तन पक्ष सुरक्षित रहा वहीं महायान में बुद्ध-वाणी का शील आचरण पक्ष प्रमुख बना रहा हैं ।

इस शाखा पर प्रचार-काल, ईसा की 400 वीं शती से 700वीं शती तक निरन्तर होता रहा है ।[25] नाथ सिद्धों की परम्परा और रैदास वाणी : भारतीय धर्म साधना में नाथ सिद्धों की चर्चा साधना और वाणी का निर्विवाद महत्त्व प्रतिपादित हुआ है । नाथ सम्प्रदाय को हिन्दी साहित्य में योग-विचार, योग-सम्प्रदाय, अवधूत सम्प्रदाय आदि नामों से भी जाना जाता है ।[26] मर्यादित जीवन को पुरस्कृत करने वाले गोरखनाथ ने, बौद्ध-सिद्धों के वामाचार एवं बहियाचारों में फँसे जन-समाज को विचार और आचार की नई संहिता प्रदान की थी। गोरखनाथ के प्रभावी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से ही नाथ पंथ की विचारधारा लोक में प्रचारित हुई है ।

साधना तत्त्वों को निगूढ़ बनाए रखने की प्रवृति / हठयोग-साधना की प्रमुखता एव अनुशासन के कारण ही. नाथ-साधना क्लिष्ट बनती रही है । इन्द्रिय-निग्रह से मनोसाधना और प्राण-साधना, सामान्य जन के लिए सहज ग्राह्य नहीं बन सकी ।[27] साध्य के प्रति समर्पित करने की ललक एवं शून्य मण्डल में ज्योति दर्शन का लक्ष्य तो रैदास वाणी काव्य में यथा स्थल देखा जाता है । सूफी भाव-विभोरता, वाणी-अभिव्यक्ति में मर्मस्पर्शी बन पड़ा है । सूफियों का इश्क हकीकी की अनुभूति, प्रिया-जीवात्मा के लिए प्रिय-राम और राम-राम के रूप में रैदास वाणी में व्यंजित देखी जा सकती है । काव्य के सम्बन्ध में अनेक साहित्यकारों ने बहुत कुछ विचार किया है । उन्होंने इसकी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ भी दी है । भरत मुनि से लेकर आधुनिक विद्वानों तक ने इस ओर सदा अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार ध्यान दिया है । 'संतकाव्य' के अन्तर्गत प्रबंधमयी रचनाओं की कमी है, जिस कारण उसमें किसी रस की पूर्ण निष्पत्ति के उदाहरणों का अधिक संख्या में पाया जाना संभव नहीं है । किन्तु संतों की फुटकर वानियों में भी हमें ऐसे अनेक स्थल मिलेंगे, जिनमें किसी-न-किसी रस की अभिव्यक्ति का पता लगाया जा सकता है । वर्णाश्रम व्यवस्था की वज्र श्रृंखलाओं को शिथिल करते हुए ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री-पुरुष, हिन्दू-मुसलमान, ऊँच-नीच आदि की सीमा रेखाओं को तोड़कर भक्तिद्वार सभी के लिए खोल दिए थे । स्वामी रामानन्द सहृदय और स्वाधीन चेता व्यक्ति थे, जो किसी प्रश्न का विचार करते हुए, व्यापक दृष्टिकोण का उपयोग करते थे। ये अपने समय के प्रभावशाली पथ-प्रदर्शक के रूप में दिखपड़ते हैं । उस युग के प्रायः प्रत्येक विशिष्ट सुधारक पर इनके प्रति, किसी-न-किसी प्रकार से अभारी होना, आज तक स्वीकार किया जाता है । संतकाव्य स्वभावतः शांतरस प्रधान है । उसके अंतर शृंगार रस का नाम आता है, जो अधिकतर मधुररस के रूप में ही दिख पड़ता है । अन्य रसों में से वीर, वीभत्स एवं अद्‌भुत के भी उदाहरण अच्छी संख्या में मिलते हैं । करुण, हास्य तथा रौद्र और भयानक का प्रायः अभाव सा है [28] सन्त रैदास की पंक्तियाँ हैं :-

कहु मन राम नाम संभारि ।
माया के भ्रम कहा भूल्यो, जाहुगे कर झारि ।। कह रैदास सत बचन गुरु के, सो जिव ते न बिसारि ।।[29]

अतः कह सकते है कि रैदास वाणी में सगुण विचार, निर्गुण में तन्मय होकर जीवन्त हो उठे है । यह जीवन्तता ही हृदय ग्राह्य बनी रही है ।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. बाबूराम, संत शिरोमणि ब्रह्मानन्द सरस्वती, पृ. 49
2. डॉ. उमेश कुमार सिंह, गुरु नानक देव और संत रविदास एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 55
3. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र, सन्त रैदास वाणी और विचार में, रैदास वाणी कृतित्व, पृ. 35 है ।'
4. २. बा. 145/2
5. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र संत रैदास वाणी और विचार, पु. 37
6. सम्पा., डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश 2, संस्करण, संवत् 2020, पृ° 509
7. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र, सन्त रैदास : वाणी और विचार, पृ. 40
8. डॉ. योगेन्द्र सिंह, संत रैदास, पृ. 36
9. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य सन्त काव्य, पृ° 160-161
10. चरणदास, भक्तिसागर, पृ° 324
11. डॉ. उमेश कुमार सिंह, गुरु नानक देव और संत रविदास एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 60
12. आचार्य, हजारीप्रसाद द्विवेदी, रविदास दर्शन (दो शब्द)
13. आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद, गुरु रैदास, पृ° 55, 1975
14. डॉ. पुष्पा गोयल, गुरु नानक-प्रकाश : काव्य, संस्कृति और दर्शन,पृ. 189
15. वही, पृ० 191
16. डॉ. राधाकृष्णन, हिन्दुओं का जीवन-दर्शन, पृ. 70
17. डॉ. राधाकृष्णन, हिन्दुओं का जीवन-दर्शन, पृ. 106
18. डॉ. मदन गोपाल गुप्त, मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति,पृ. 66
19. डॉ. उमेश कुमार सिंह, गुरु नानक देव और संत रविदास, पृ. 127
20. गुरु रविदास वाणी, पद 51, पृ. 91
21. इंद्रराज सिंह, संत रविदास, पृ° 117
22. डॉ. पुष्पा गोयल, गुरु नानक प्रकाश : काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ° 58
23. डॉ. पुष्पा गोयल, गुरु नानक प्रकाश : काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० 79
24. रैदास वाणी, पद 64 सौ कहा जाने पीर पराई । जाके दिल में दरद न आई
25. वही, पृ. 78
26. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ. 1
27. कोमल सिंह सोलंकी, नाथ पंथ और निर्गुण सन्त-काव्य, पृ° 130
28. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य, पृ° 62
29. रैदास वाणी, पद 71